रत्नसारकुमार

लेखक

मुनि सुमतिमुनिजी

प्रकाशक

पण्डित काशीनाथ जैन,

२०१ हरिसन रोड,

कलकत्ता।

प्रथमावृत्ति १००० [सन् १९२५] मूल्य ॥)
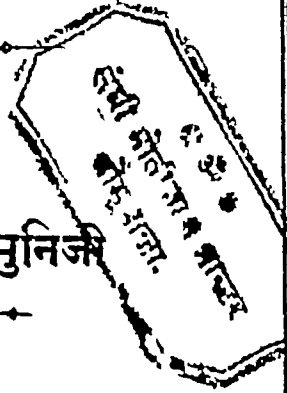
यह पुस्तक एक प्राचीन कथाके अधार पर लिखि गयी है। जिसमें व्रत पालन करनेकी एवं सुपात्र दान देनेकी महिमा बतलायी गयी है। साथ ही धर्म और पुण्य मनुष्यके जीवनमें किस प्रकार सहायता पहुँचाते हैं, यह भी अच्छी तरह दिखलाया है।

पूर्वभवमें रत्नसार कुमारनें अपने विशुद्ध परिणामसे एक जिनकल्पी मुनिको अहारदान देकर अत्यन्त भोग कर्म उपार्जन किया था। जिसके कारण उन्होंने इस भवमें उच्चकुल, उच्च धर्म, और अपार सुख-सम्पत्ती पायी। रत्नसारकी उच्च जीवनी पढकर हम लोगोंको भी इसका अनुकरण करना चाहिये। सुपात्रदान देनेके कारण अनेक पुरुषोंने सुख-लाभ किया है।

रत्नसार कुमारको बाल्यावस्थामें ही धर्मोपदेश लग चुका था। अतएव वह आपना अधिक समय धर्म-कार्यमें ही व्यतीत किया करते थे। एक समय रत्नविशाला नगरीके समीपके जंगलमें आचार्य महाराजाका शुभागमन हुआ। यह जानकर वह भी उनके

वन्दनार्थ गये। आचार्य महाराजके उपदेशको श्रवण कर उन्होंने "परिग्रह प्रमाण" का व्रत ग्रहण किया। जिसकी पालना करनेमें उन्हें अनेक प्रकारके कष्ट आते रहे; पर उन्होंने किसी तरह उस व्रतको नहीं तोड़ा। देवताओंने भी इसकी परीक्षा लेनेके लिये गहनातिगहन उपसर्ग किये। यहाँ तक कि उनके शरीरको नाश कर डालने तकका भय दिखाया; पर फिर भी उन्होंने किसी तरह व्रत-भंग नहीं किया और अपनी मनोभावना उच्च बनाये रहे। शेषमें देवताने ही उनपर प्रसन्न होकर अपने किये हुए उपसर्गके लिये उनसे क्षमा-याचना की।

सज्जनों! किसी व्रतको लेकर उसे नाना विपत्तिओंके उपस्थित होने पर भी पूरी तरह आद्यन्त पालन करते रहना, वही वास्तवमें सच्चा व्रत कहलाता है। अस्तु यहाँपर मैं अपने परम माननीय मुनिराज श्रीसुमति मुनिजीका पूर्ण अनुगृहीत हूँ। जिन्होंने इस पुस्तकको लिखकर मुझे देनेकी कृपाकी है। आशा है, आप इसी प्रकार अन्यान्य पुस्तकें तैयार करनेका भी प्रयत्न करेंगे।

प्यारे पाठको! आप सज्जनोंकी सेवामें यह मेरी चउदहवीं पुस्तक उपस्थित हो रही है। आशा है, अन्यान्य पुस्तकोंके अनुसार इसे भी सप्रेम अपना कर मेरे उत्साहको बढायेंगे।

ता० १५-७-२५
२०१ हरिसन रोड,
कलकत्ता।

आपका
काशीनाथ जैन

रत्नसार कुमार

पहला परिच्छेद
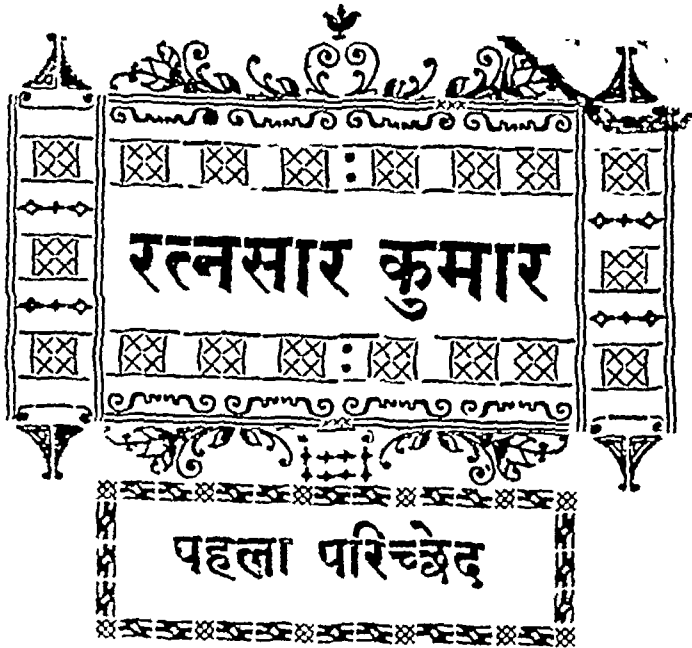
विकट-संग्राम

रत्नविशाला नामक नगरीमें समरसिंह नामका एक राजा राज्य करता था। उसी नगरमें वसुसार नामका एक सेठ भी रहता था। उसके पुत्रका नाम रत्नसार था।

एक दिन रत्नसार अपने मित्रोंके साथ वनमें गया। वहाँ उसने विनयधर नामक आचार्यको देखा और उनके पास जा, उनको प्रदक्षिणाकर वन्दना करके उनके सामने बैठ गया। इसके बाद उसने हाथ जोड़कर आचार्यसे पूछा,—

"हे भग-वन्.! कृपाकर यह बतलाइये, कि मनुष्य सुख किस तरह पाता है ?"

यह सुन गुरुने कहा,—"हे भद्र ! सुनो, जीव इस लोकमें या परलोकमें सन्तोषसे ही सुख पाता है। यह सन्तोष दो प्रकारका है—एक तो देशसे और दूसरा सबसे। इन दोनोंमें गृहस्थोंके लिये देशसे ही सन्तोष माना है और मुनियोंका सबसे। यह सन्तोष अनन्त सुखका देनेवाला है। श्रावकोंको परिग्रहके परिमाणके लिये देशसे सन्तोष रखना चाहिये। कहा भी है, कि असन्तोषी इन्द्र या चक्रवर्त्ती को भी जो सुख नहीं मिल सकता, वही सन्तोषधारी भव्य जीवोंको मिल जाता है। इसलिये भव्यजनोंको चाहिये कि धन आदिका परिमाण करें।"

गुरुके मुखसे ऐसे वचन सुनकर रत्नसार कुमारने सम्यक्त्व सहित परिग्रहका परिमाण किया और कहा,—"हे भगवन् ! मुझे एक लाख रत्न, दस लाख मुहरें, मोती और मूँगेके आठ आठ सन्दूक, आठ करोड़ पुराने सिक्के, साठ हजार गौएँ, पाँच सौ घर, सौ सवारियाँ, एक हजार घोड़े और सौ हाथी, इतनी चीज़ मेरे लिये कल्पनीय है। बस इनसे अधिक मुझे और कुछ भी नहीं चाहिये। मैं राज्य नहीं ग्रहण करूँगा। आजसे मैं पाँच अतिचारोंसे रहित शुद्ध पाँचवाँ अणुव्रत ग्रहण करता हूँ।"

इस प्रकार नियम लेकर कुमार रत्नसार गुरुको वन्दना

कर घर आया और उत्तम रीतिसे धर्मका पालन करने लगा।

एकदिन रत्नसार कुमार अपने मित्रोंके साथ वनमें गया तो इधर-उधर घुमते-फिरते उसे किन्नरोंका एक जोड़ा दिखाई दिया। उनके मुख घोड़ेके समान और शरीर आदमियोंकी तरह थे। उसने ऐसा रूप न कभी देखा था न सुना, इसी लिये उसने विस्मित होकर मन-ही-मन कहा,—"यदि ये आदमी हैं, तो फिर इनके मुँह घोड़ेकी तरह क्यों हैं? अतएव ये कदापि मनुष्य नहीं हैं। देवता भी नहीं हो सकते, ये तो किसी दूसरे द्वीपमें रहनेवाले तिर्यंच मालूम पड़ते हैं। अथवा हो सकता है, कि किसी देवताकी सवारी हों।"

ये बातें उसने कुछ ऊँचे स्वरमें कहीं। इन्हें सुनकर किन्नरने कहा,—"हे रत्नसार! तुम वेकार हमें क्यों नीचा बना रहे हो? हमलोग इच्छानुसार घूमने और मौज करने वाले यक्ष हैं। सच पूछो, तो तुम्हीं तिर्यञ्च (जानवर) हो, क्योंकि तुम्हारे पिताने तुम्हें खूब धोखा दिया है।"

रत्नसारने पूछा,—"मेरे पिताने मुझे किसतरह छला है।"

किन्नरने कहा,—"सुनो! तुम्हारा बाप दूसरे द्वीपसे एक घोड़ा ले आया है। वह काले रङ्गका, दुबला, छोटे कान वाला, बड़ा चञ्चल, मोटी गर्दनवाला और अपने स्वामीको विजय देनेवाला है। ऐसे घोड़े पर राजाही बैठते हैं। ऐसा घोड़ा हवाकी तरह तेज होता है और एक दिनमें सौ कोस तक ले जाता है। और तो और, सातही दिनोंमें सारी पृथ्वीको

सैरकर आ सकता है। मूर्ख! तुम्हारे पिताने ऐसा घोड़ा घरमें छिपा रखा है। मैं तुम्हें धीर-वीर तभी जानूँगा, जब तुम उस घोड़ेको हाथमें करलोगे।" यह कह, यह किन्नर आकाश-मार्गसे उड़ गया। रत्नसार उस किन्नरकी बातें सुन, मन-ही-मन खेद करता हुआ घर आया और यही सोचने लगा, कि सचमुच मेरे पिताने मेरे साथ छल किया, कि घोड़ेको मुझसे छिपा रखा। यही सोचता हुआ वह घरमें किवाड़ बन्द करके सो रहा। थोड़ी देरमें उसके पिताने आकर कहा,—"पुत्र! इस प्रकार किवाड़ बन्द करके क्यों सोया है? क्या तुझे कोई दुःख हुआ है? क्या शरीरमें कोई व्याधि उत्पन्न हुई है? यदि कुछ हुआ हो तो कह दे, उसका इलाज करूँ। विना कुछ कहे कैसे मालूम पड़ेगा, कि तुझे क्या हुआ है?"

यह सुन रत्नसार किवाड़ खोलकर बाहर आया और पितासे साफ़-साफ़ अपने दिलकी बात कह दी। सुनकर उसके पिताने कहा,—"पुत्र! मैंने इसी लिये तुझसे घोड़ेकी बात नहीं कही, कि तू उसे पाने पर, सारी दुनियाकी ख़ाक छानता फिरेगा और इधर मैं एक दिनके लिये भी तुझे आँखोंके ओ-झल होने देना नहीं चाहता; पर जब तुझे ऐसी इच्छा है, कि वह घोड़ा ले ही लूँ, तब मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं तुझे घोड़ा दिये देता हूँ। तुझे जैसा उचित जँचे, वैसा करना।"

इसके बाद जब घोड़ा मिल गया, तब रत्नसार उसपर

सवार हो मित्रोंके साथ नगरके बाहर चला गया। वहाँ सभी अपने-अपने घोड़ेको इधर-उधर दौड़ाने लगे। रत्नसार भी ज्यों-ज्यों अपने घोड़ेकी लगाम खींचने लगा, त्यों-त्यों वह हवासे बातें करता हुआ तेजीसे दौड़ने लगा।

इधर सेठ वसुसारके घर पींजरेमें बैठा हुआ तोता सेठसे कहने लगा,—"पिताजी! रत्नसारकुमार घोड़ेपर बैठा हुआ बड़ी तेजीसे चला जा रहा है। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं उसकी सुधि लेनेके लिये पीछे-पीछे जाऊँ। क्योंकि यदि रत्नसारकुमार किसी विपद्में पड़ जायेगा, तो मैं उसकी सहायता करूँगा।"

तोतेकी यह बात सुन, सेठ वसुसारने प्रसन्न होकर कहा,—"तोता! तू बहुत ठीक कहता है। जा, अभी चला जा और कुमारकी सहायता कर।"

यह कह, सेठने उसे पींजरेसे बाहर निकाल दिया। वह भी उड़ता हुआ झट रत्नसारकुमारके पास जा पहुँचा। रत्नसारने भी उसे छोटे भाईकी तरह अपनी गोदमें बैठा लिया।

रत्नसारके और-और मित्र पीछे रह गये, इसलिये वे घूम फिर अपने-अपने घर लौट गये। इधर रत्नसार उस तोतेको साथ लिये आगे ही बढ़ता चला गया। जाते-जाते वह एक जङ्गलमें पहुँचा। वहाँ उसने एक पेड़की डालमें हिंडोला लटकाये एक देवकुमारके समान तापसकुमारको झुला झूलते देखा। उसे देखकर कुमार रत्नसारके मनमें बड़ा प्रेम

उपजा। वह तापसकुमार भी इसे देखकर सोचने लगा, कि यह कौन-यहाँ आ पहुँचा? यही सोच, हिंडोलेसे नीचे उतर; कुमारके पास आकर तापसकुमारने पूछा,—"क्यों भाई तुम कहाँसे चले आ रहे हो? तुम्हारा नाम क्या है? तुम्हारे माँ-बापका नाम क्या है? तुम्हारी जाति क्या है? तुम अकेले यहाँ क्यों घूम रहे हो और किसे ढूँढ़ रहे हो?"

तापसकुमारकी यह बात सुन कुमार रत्नसारको बड़ा हर्ष हुआ। फिर तापसकुमारने कहा,—"हे कुमार! तुम आज मेरे अतिथि बनो और घोड़ेसे नीचे उतरकर मेरे प्रश्नोंके उत्तर दो।"

यह सुन रत्नसार घोड़ेसे नीचे उतर पड़ा और जब तक कुछ कहना ही चाहता था, तबतक वह चञ्चल और चतुर तोता बोल उठा,—"हे तापसकुमार! तुम इनका कुल परिचय क्यों पूछ रहे हो? क्या कोई विवाह होनेवाला है, जो यह सवाल कर रहे हो? जब ये तुम्हारे अतिथि हैं, तब पूज्य हैं, बस, यही जानकर इनकी सेवा-पूजा करो। और पूछताछ करके क्या करोगे?"

यह सुन वह तापसकुमार बड़ाही प्रसन्न हुआ और उसने उस तोतेके गलेमें एक फूलोंकी माला पहना दी। इसके बाद उसने कहा,—"हे कुमार! तुम्हारी जितनी प्रशंसा की जाये, कम ही है। तुम धन्य हो; क्योंकि तुम्हें बड़े भाग्यसे इस तोतेके समान मित्र मिल गया है। मै तापस हूँ, इसलिये

हिन्डोलेसे नीचे उतर कर कुमारके पास आकर तापस कुमारने पूछा—पृष्ठ ६

मुझसे तुम्हारी उचित सेवा तो क्या बन पड़ेगी, तो भी जो कुछ बन जाये, उसे स्वीकार करो और मेरे घर चलकर मेरा आतिथ्य ग्रहण करो। आज तो तुम्हें मेरी सेवा स्वीकार करनी ही होगी।"

तापसकुमारकी यह बात सुन, रत्नसार बड़े आनन्दसे नीचे उतरा। तापसकुमारने उसे वनकी शोभा दिखलानी शुरू की। उसने भिन्न-भिन्न फल-फूलोंके वृक्षोंके नाम बतलाये और तालाबमें ले जाकर स्नान कराया। स्नान करनेके अनन्तर तापसकुमारने तरह-तरहके फल कुमार रत्नसारके सामने रखे। उनमें कुछके नाम ये हैं,—अमृतके समान मधुर स्वाद वाली दाख, पके हुए आम, केले, कटहल, नारियल, खजूर, अमरूद, खीरा, ककड़ी, बिजौरा, नीबू, नारङ्गी, अनार और सिंघाड़ा। रत्नसार और उस तोतेने उन फलोंमें से थोड़ा-थोड़ा लेकर खाया। तदनन्तर कुमारको मुख शुद्धिके लिये नागर-वेलका पान, इलायची, लौंग, जायफल और अम्बर आदि चीजें दी गयीं। घोड़ेको भी हरी-हरी घास खिलायी गई। सबलोग खा-पीकर निश्चिन्त होगये।

इसके बाद रत्नसारके इशारेपर उस तोतेने तापसकुमारसे पूछा,—हे मित्र! इस नौजवानीमें ही तुमने तापस-व्रत किस लिये ग्रहण कर लिया है? अहा, तुम्हारा रूप कैसा मनोहर है। शरीर कैसा कोमल है! तो भी इतना कठिन तप कर रहे हो! हे महाराज? तुम्हारी सारी चतुरता और सुजनता

जंगलमें खिले हुए मालती-पुष्पको भाँति निष्फल जा रहो है। तुम्हारे जिस शरीर पर कोमल रेशमो वस्त्र और गहने शोभा पाते, उसपर तुमने यह वल्कल किस लिये धारण किया है? तुम्हारे ये काले-काले घुँघराले बाल जटा बांधने से नहीं सोहते। तुम्हारा लावण्य और नवीन योवन तो अभो भोग-विलासके योग्य है। बतलाओ तुमने यह तापस-व्रत वैराग्यके कारण लिया है या किसी देवता अथवा तपस्वोको वशमें करनेके लिये लिया है?

यह सुन, तापसकुमारने आंखोंमें आंसू भरकर गद्गद स्वरसे कहा,—"हे कुमार" हे मित्र तोते! तुम्हरे जैसा मित्र मुझे इस संसारमें आज तक नहीं मिला, जो तुम्हें मुझे देखकर इस प्रकार दया आरहो है। भाइ! अपने दुःखसे दुनिया दुखी होती है, पर जो दूसरेले दुःखसे दुखो हो, वह कोई विरलाहो नज़र आता है। कहाभो है कि, शूर-वोर दुनियामें हज़ारों दिखाई देते हैं। विद्वान्‌भो बहुत मिलते हैं। कुबेरकेसे धनियोंको भी कमो नहों है; पर दुखियोंको देखकर दुखो होने वाला पुरुष इस जगत्‌में बड़ो मुश्किलसे दिखाई देता है। हे कुमार। मैं तुम्हें अपना सारा कच्चा हाल सुनाउँगा। अपने ऊपर विश्वास करने वालेसे कहना हो चाहिए।

उन लोगोंमें इस प्रकार बातें हो हो रहो थीं, कि बड़े-ज़ोरका तूफ़ान आया, जिससे सारा वन अंधकार मय हो उठा। तापस-कुमार तो उसी ज़ोरके अन्धड़में उड़ चला। यह देख

तापस-कुमार बड़े ज़ोरसे चिल्लाने लगा,—"भाई" कहाँ गये? शीघ्र आकर मेरी रक्षा करो"

तापस-कुमारकी यह बात सुनकर रत्नसार यह कहता हुआ उसके पीछे-पीछे दौड़ा, कि अरे! मेरे जीवन-स्वरूप तापसकुमारको यह अन्धड़ कहाँ लिये जारहा है। कुछ दूर जानेपर उस तोतेने कहा,—"कुमार! वह तापसकुमार तो अब कहीं दिखाई नहीं देता। न मालूम हवा उसे कहाँ उड़ा लेगई। अबतक तो वह लाखों योजनकी दूरी पर पहुँच गया होगा। इस लिये कुमार अबतो तुम पीछे लौट चलो।

यह सुन रत्नसार नानाप्रकारसे विलाप करता हुआ पीछे लौट चला। थोड़ी दूर जाते-न-जाते उस तोतेने कहा,—"कुमार! वह तापसकुमार पुरुष नहीं था। मेरे जानतो कोई स्त्री विद्या-बलसे पुरुषका वेष धारण किये हुई थी। बातोंसे, रङ्ग ढङ्गसे, चाल-चलनसे, आँखोंकी चितवनसे वह स्त्रीही मालूम पड़ती थी। यह सारा काण्ड किसी देव, दानव या विद्याधरने किया है। ज्योंही वह लड़की उन दुष्ट देवके पंजेसे छुटेगी, त्योंही तुम्हारे साथ विवाह कर लेगी; क्योंकि कोई कल्पवृक्षको छोड़कर अन्य वृक्षका सेवन कब कर सकता है?"

तोतेकी यह बात सुन इष्टदेवताकी भाँति उस तापसकुमारका स्मरण करता हुआ रत्नसार आगे बढ़ा। कुछ दूरपर उसने वनमेंही एक ऊँचे तोरणों और ध्वजाओंसे शोभित

श्रीआदिनाथ स्वामीका एक मन्दिर देखा। उस मन्दिरके पास पहुँच घोड़ेसे नीचे उतरकर फल-फूल हाथमें लिये हुए वह मन्दिरके अन्दर गया और भली भाँति पूजाकर जिनराजकी स्तुति करने लगा।

पूजा-स्तुति समाप्तकर वह मन्दिरकी सारी शोभा घूम-घूम कर देखने लगा। सब देखनेके बाद वह एक खिड़कीपर आ बैठा। उस समय उसने तोतेसे कहा,—"हे शुकराज! अभी तक उस तापसकुमारका कुछ पता नहीं चला।"

तोतेने कहा,—"कुमार! खेद मत करो। उससे तुम्हें आजही भेंट हो जायगी!"

कुमार और तोतेमें येही बातें हो रही थी, इसी समय एक देवाङ्गनाके समान सुन्दर कन्या मोरपर बैठी हुई वहाँ आई और जिनेश्वरकी पूजाकर प्रभुके सामनेही नाचने लगी। रत्नसारकुमार और तोतेको उस कन्याका नाच देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वह कन्या भी कुमारका रूप देखकर विस्मयमें पड़ गयी।

कुमारने कहा,—"हे बाले! यदि तुम कुछ बुरी न मानो तो मैं कुछ पूछूँ।"

उस कन्याने कहा,—"हाँ, हाँ, तुम्हें जो कुछ पूछना हो, बड़े आनन्दसे पूछ सकते हो।"

कुमारने पूछा,—"अच्छा, यह बतलाओ, कि तुम कौन हो। मै तुम्हारा पूरा परिचय जाना चाहता हूँ।"

उस कन्याने कहा,—"सुनो, कनकपुर नामक एक नगरीमें कनकध्वज नामके राजा राज्य करते हैं। उनकी रानीका नाम कुसुमश्री है। एक दिन रातको रानी सोयी हुयी थी। इतनेमें उसने सपना देखा कि उसकी गोदमें दो मालाएँ आगिरी। यह देख वह झट जग पड़ी और सवेरे उठतेही उसने इस सपनेकी बात राजाको कह सुनायी। "राजाने मन-ही-मन विचारकर कहा,—"प्यारी! इस स्वप्नका तो यही फल मालूम पड़ता है, कि तुम्हें एकही साथ दो कन्याएँ होंगी।"

"पतिका यह वचन सुन रानीको बड़ा हर्ष हुआ। क्रमसे रानीको गर्भ रहा और नौ महीने पूरे होनेपर उसके गर्भसे दो कन्याएँ जन्मीं। पिताने पहली कन्याका नाम अशोकमञ्जरी और दूसरीका तिलकमञ्जरी रखा। पाँच धायें उन दोनोंका लालन-पालन करने लगीं। धीरे-धीरे कन्याएँ बड़ी होने लगीं और क्रमसे सब कुछ सीखती पढ़ती हुई युवावस्थाको प्राप्त हुईं। उस समय उनका रूप, सौभाग्य, लावण्य आदि गुण और शरीरकी कान्ति ऐसी बढ़ गयी, कि तीनों लोक उनके सौन्दर्यपर मुग्ध होने लगे। दोनों बहनोंमें इतना मेल था, कि एकके बिना दूसरीको घड़ी भरभी चैन नहीं मिलता था। कहते हैं कि धन्य हैं, वे प्राणी जो दोनों आँखोंकी तरह एक संग सोते, जागते, हर्षित होते और रोते हैं।

"अब राजा कनकध्वज अपने मनमें विचार करने लगे, कि इन दोनों बहनोंको एकही वरमें एकही पुरुषके साथ व्याह

दिया जाये, तो अच्छा है ; क्योंकि यदि ये अलग-अलग हो जायेंगी तो कदापि जी नहीं सकेंगी। इसी तरहकी चिन्ताओंमें राजा सदा पड़े रहते थे। सच है, कन्याके पिताको कभी निश्चिन्तता नहीं होती। पहले तो कन्याकी पैदायश होते ही सोच होने लगता है, कि पुत्र न होकर कन्या क्यों हुई ? जब बड़ी होती है, तब उसके ब्याहकी चिन्ता पड़ जाती है। ब्याह होनेपर यह चिन्ता लगी रहती है, कि वह सुखसे रहती है या नहीं। इसलिये कन्याका पिता होना सदैव दुःख काही कारण होता है।

"एकबार वसन्तके दिनोंमें दोनों बहनें क्रीड़ा करनेके लिये वनमें गयी हुई थीं। वहाँ एक पेड़में हिंडोला लगाकर अशोकमञ्जरी झूलने और तिलकमंजरी उसे झुलाने लगी। वहाँ उस समय नगरके बहुतसे आदमी इकट्ठे थे और उनका झूलना-झुलाना देख रहे थे। इसी समय कोई विद्याधर झूलती हुई अशोकमञ्जरीको उड़ाले चला। उस समय अशोकमञ्जरी बड़े ज़ोर-ज़ोरसे चिल्लाकर रोने लगी। उसकी चिल्लाहट सुनकर पहरेदार और सिपाही उसकी रक्षाके लिये दौड़े; पर तब तक वह विद्याधर उसे लेकर चलता हो गया था। जब अपनी पुत्रीके हरणकी बात राजाको मालूम हुई, तब वे अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करने लगे। तिलकमञ्जरी भी बहनके शोकमें रो-रोकर मूर्च्छित हो गयी। पानीके छींटे डालने पर जब उसे होश हुआ, तब औरभी ज़ोर-ज़ोरसे बहन

का नाम लेकर रोने लगी। सन्ध्याको समय सब लोग अपने-अपने घर आये, राजा कनकध्वज, रानी कुसुमश्री और तिलकमञ्जरी आदि सभी बड़ी राततक अशोकमञ्जरीको याद करके रोते हुए जागते रहे। पीछे उन्हें भी नींद आगयी।

"रातके पिछले पहर उठकर तिलकमञ्जरी चक्रेश्वरीदेवीके मन्दिरमें गयी और उनकी पूजा करके विनय करने लगी कि माता! मेरी बहनका समाचार सुनाओ, नहीं तो मै अन्न-जल त्यागकर प्राण दे दूँगी। उसकी ऐसी बात सुन चक्रेश्वरीदेवीने उसकी भक्तिसे प्रसन्न होकर कहा,—बेटी! तू चिन्ता न कर। तेरी बहन अच्छी तरहसे है। शोक छोड़कर भोजनादि कर। आजसे ठीक एक महीने बाद तुझे अपनी बहन का समाचार मिलेगा और उसी समय तुम दोनोंका मिलाप होगा।—यह सुनकर तिलकमञ्जरीने पूछा, कि मेरी बहन कब, कहाँ और कैसे मुझे मिलेगी? देवीने कहा, कि बेटी! इस नगरके पश्चिममें बड़ी दूरपर एक घना जङ्गल है। उसमें मणिरत्नोंसे जड़ा हुआ श्रीआदिनाथस्वामीका मन्दिर है। उसमें सोने और रत्नोंसे बनी हुई श्रीआदिनाथ भगवानकी मूर्त्ति है। तू जाकर उसी प्रतिमाकी भक्तिके साथ पूजा कर। वहीं पर तेरी बहन तुझे मिलेगी और अन्य रीतिसे भी लाभ होगा। मेरा यह सेवक रत्नचुड़ नामक देवता मोरका रूप धारणकर तुझे हरदम वहाँ पहुँचा आया करेगा। देवीने इतना कहाही था कि इसी समय एक मोर आसमानसे नीचे उतरा। उसी

दिनसे मैं देवी कृपासे इसी मोरके ऊपर सवार होकर यहाँ आया करती हूँ। अबतो तुम समझही गये होगे, कि मैंही वह तिलकमञ्जरी हूँ। आज मुझे यहाँ पूजाके निमित्त आते हुए पूरा एक महीना होगया, किन्तु अभीतक मेरी बहनका पता नहीं लगा। तुम बहुत देशोंमें घूमे हो, इसलिये बतलाओ तो सही, तुमने कहीं कोई परम-सुन्दरी कन्या देखी है?"

यह सारा कच्चाहाल सुनकर रत्नसारकुमारने कहा,—"हे सुन्दरी! पृथ्वीपर घूमते हुए मैंने आजतक तुम्हारे समान रूपवती कन्यातो देखीही नहीं; पर पासके ही जङ्गलमें मैंने एक दिव्यकान्ति तापसकुमारको अलबत्ता देखा था, जो तुम्हारेही समान सुन्दर था और अवस्थामें भी तुमसे कुछही बड़ा रहा होगा।"

रत्नसारकी बात पूरी होते-नहीते—तोता बोल उठा,—"हे सुन्दरी! घबराओ नहीं; आजही तुम्हारी बहन तुम्हें मिल जायेगी।"

तिलकमञ्जरी बोली,—"यदि तेरी बात सच निकली, तो हम दोनों बहनें मिलकर तेरी पूजा करेंगी।"

इतनेमें एक अपूर्व हंसिनी आकाश मार्गसे आकर रत्नसारकी गोदमें गिर-पड़ी। भयसे विह्वल और काँपती हुई वह हंसिनी बार-बार कुमार रत्नसारकी ओर देखती हुई मनुष्यकी भाषामें बोली,—"हे सत्पुरुष! हे वीर! मुझ शरणमें आयी हुईकी रक्षा करो। हे दयासागर! मुझ दीनकी रक्षा करो।

मै तुम्हारी शरणमें हूँ।"

यह सुनकर कुमारने उसके शरीरपर हाथ फेरते हुए कहा,—"हे हंसिनी! तू तनिक भी भय न कर। चाहे कोई नर हो, किन्नर हो, विद्याधर हो, देवहो; परन्तु मेरी गोदमें बैठी हुई तुझको अब कोई मार नहीं सकता।"

इसके बाद तालाबसे पानी लाकर उसे पिलाते हुए कुमारने कहा,—"हंसी! अब यह बताकि तू कौन है? कहाँसे आरही है? तू मनुष्यकी बोली क्योंकर बोलती है? तुझे भय काहेका है? सब खुलासा कह सुना।"

ज्योंही वह हंसी अपना हाल सुनानेको तैयार हुई, त्योंही विद्याधरोंकी सेना गर्जन करती हुई आकाशसे नीचे उतरी। यह देख वह तोता डर गया और मन्दिरके बाहर दरवाज़ेपर आ बैठा। वहाँ आकर वह तीर्थके प्रभावसे अथवा कुमारके भाग्यसे भयङ्कर रूपसे भ्रकुटी चढ़ाये हुए विद्याधरोंकी सेनाकी ओर देखता हुआ बोला,—"विद्याधरों! तुम भला किसके पीछे लगे हो? कहाँ जारहे हो? आगे न बढ़ो। वहाँ देव-दानवोंसे भी नहीं डरने वाला कुमार रत्नसार बैठा हुआ है। यदि वह तुमपर क्रोध करेगा, तो फिर तुमसे भागतेभी न बनेगा।" उस तोतेकी यह ललकार सुन विद्याधरोंको भी डर होगया और वे भौंचकसे होकर सोचने लगे, कि अवश्यही वह कोई देव या दानव है, नहीं तो हमें ऐसी डाट क्यों बतलाता? जिसके पाले हुए पक्षीका इतना बड़ा साहस है, वह स्वयं न

जाने कैसा होगा? बिना शत्रु का बलाबल जाने युद्ध करना उचित नहीं हैं। यही सोचकर वे लौट गये और अपने राजाको यह सब हाल जा सुनाया। यह हाल सुन विद्याधरों के राजाने क्रोधके साथ गर्जनकर पैर पृथ्वी पर पटकते हुए कहा,—"धिक्कार है, तुम लोगोंको जो एक तोतेकी डाँट सुनकर भाग आये। कहाँका तोता और कहाँका कुमार! मुझसे बढ़कर वीर और कौन होगा? अच्छा, देखो, मैं क्या काम करता हूँ।"

यह कह विद्याधरोंके राजाने अपने दस सिर और बीस हाथ बनाये। एक हाथमें तलवार, दूसरेमें पटा, तीसरेमें गदा, चौथेमें धनुष इस प्रकार सब हाथोंमें अलग-अलग हथियार लिये, विकराल रूप बनाये, भयङ्कर गर्जन करता हुआ वह विद्याधरोंका राजा आदिनाथ स्वामीके मन्दिरके पास आया। उसका यह भयङ्कर रूप देख, डरा हुआ तोता कुमारके पास जा छिपा। विद्याधरोंके राजाने बड़े ज़ोरसे कड़ककर कहा,—"अरे मूर्ख! जा, दूर भाग जा! नहीं तो मारा जायेगा। तू मेरी प्राण-समान इस हंसिनीको गोदमें लिये बैठा है? अरे निर्लज्ज! अरे निर्भय! अरे निःशङ्क! तू जाता है या चुपचाप बैठा मेरा मुँह देखता है? मालूम होता है, कि तेरी मौत तेरे सिर पर नाच रही है।"

तोता, तिलकमंजरी, मोर और हंसी ये चारों उस विद्याधरका रूप देखकर डर गये; पर कुमारने निर्भय बने हुए

कुमारने अपने पैने बाणोंसे उसके सारे हथियार नष्ट कर डाले। (पृष्ठ १७)

हँसकर कहा ,—"अरे मूढ ! क्यों व्यर्थकी डींगें हाँकता और मुझे धमकाता है ? लड़कोंको जाकर डराना; यहाँ कोई डरनेवाला नहीं है। इस मेरी शरणमें आयी हुई हंसिनीको तू कदापि नहीं पासकता। क्या साँपके सिरसे तू मणि उतारना चाहता है ? जा, जल्द भाग जा, नहीं तो इन दसों सिरों को दसों दिशाओंमें काट कर फेंकदूँगा।"

इसी समय मोरका रूप छोड़कर चन्द्रचूड़ नामक देवता बहुतसे अस्त्र-शस्त्र लिये हुए कुमारके पास आकर खड़ा होगया। सचहै, पुण्यके प्रतापसे मनुष्यको क्या नहीं मिलता ? तदनन्तर चन्द्रचूड़ने कहा ,—"हे कुमार! तुम निडर होकर युद्ध करो। मैं तुम्हें शस्त्रोंका टोटा न होने दूँगा। तुम अवश्यही अपने शत्रुका सिर चूर-चूर कर डालोगे।"

यह सुन, कुमारका उत्साह दूना होगया। उसने हंसीको तिलकमञ्जरीके हवाले कर घोड़े पर सवारीको। इसी समय चन्द्रचूड़ने उसके हाथमें तीर और धनुष दे दिये। कुमारने धनुर्विद्याके प्रतापसे सब विद्याधरोंको हरा दिया। खूब घमासान लड़ाई हुई। बाणोंकी लगातार वर्षा हुई। विद्याधर विद्याके बलसे लड़ते थे और कुमारको देवताका बल मिल गया था, इसलिये अन्तमें विद्याधरोंकोही भागना पड़ा। तब अकेला वही दशानन राजा लड़नेके लिये उठ खड़ा हुआ। कुमारने अपने पैने बाणोंसे उसके सारे हथियार नष्ट कर डाले। अन्तमें कुमारका तीर छातीमें लगनेसे वह मूर्च्छित होकर भूमिमें

गिरपड़ा ; फिर मूर्च्छा टूटने पर उसने हज़ारों रूप बदले और बड़ो भयङ्कर लड़ाई करने लगा, पर कुमार ज़रा भी न डरा। वोर पुरुष कालसे भी नहीं डरते। कुमारका धैर्य्य सदा एकसा बना रहा। पोछे कुमारको सङ्कटमें पड़ा देख चन्द्रचूड़ स्वयं गदालेकर विद्याधरोंके राजाको मारने चला। उसने चन्द्रचूड़पर खूब बाण चलाये; पर सब बेकार हो गये। अन्तमें देवताने उसे गदासे घायल कर-करके गिराही दिया। जब विद्याधरोंके राजाने देखा कि, एकतो कुमार स्वयं ही बड़ा वीर है और दूसरे उसको देवताकी सहायता मिल गई है, तब वह हार मानकर भाग गया। उसके तमाम सिपाही भी भाग खड़े हुए।

कुमारको यह विजय धर्मकाही फल था ; क्योंकि जहां धर्म होता है, वहीं जय होती है। इस प्रकार प्रबल शत्रुको पराजित कर कुमार चन्द्रचूड़को साथ लिये हुए श्रीआदिनाथ-स्वामीके मन्दिरमें चला आया।

दूसरा परिच्छेद।
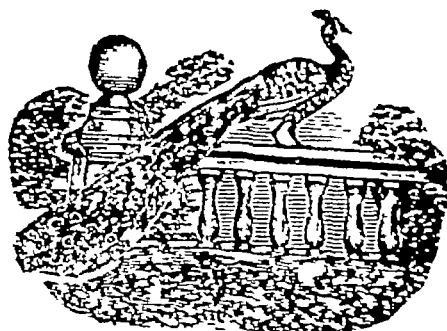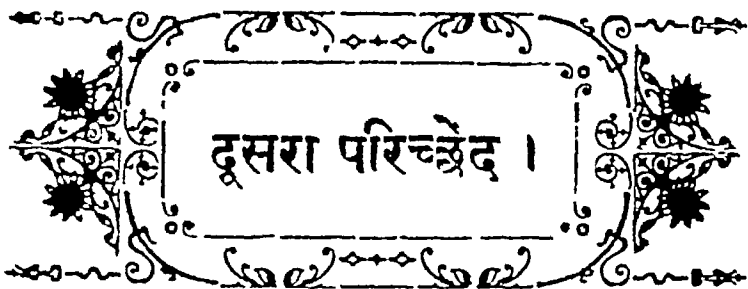
परीक्षा

कुमारका यह चरित्र देख मन ही-मन आश्चर्य करती हुई तिलकमञ्जरी सोचने लगी,—"यह युवा तो कोई बड़ाही अद्भुत शक्तिशाली पुरुष मालूम पड़ता है। यदि यही मेरा पति हो और मेरी बहन यहीं मुझे मिल जाये, तो मैं अपना बड़ा भाग्य समझूँ।"

इसके बाद तिलकमञ्जरीसे हंसीको लेकर कुमारने पूछा,—"अब तू बता, कि तू कौन है। विद्याधरोंके राजाके हाथमें कैसे जा पड़ी? मनुष्यकी बोली क्योंकर बोलती है?"

यह सुन हंसीने कहा,—"स्वामी सुनो। वैताढ्य-पर्वतपर रथनुपुर नामका नगर है। वहाँ तरुणीमृगाङ्क नामका विद्याधर राजा है। एक दिन वह कनकपुर नगरके ऊपरसे जा रहा था। इसी समय उसने हिंडोला पर झूलती हुई राजकुमारी अशोकमञ्जरीको देखा। उसे देखते ही इसके मनमें अनुराग उपजा और वह उसे एक घने जङ्गलमें उड़ा

लेआया। वहाँ लाकर उसने उस रोती और घबराती हुई राजकन्यासे कहा,—'हे सुन्दरी ! तुम क्यों डरती हो ? क्यों इस तरह कलेजा फाड़कर रोती हो ? मैं कोई चोर डाकू या पर-नारीका सेवन करनेवाला नहीं हूँ। मैं विद्याधरोंका राजा हूँ और तुम्हारा दास बनना चाहता हूँ। तुम सब विद्या-धरोंकी रानी बन जाओ।' यह सुन अशोकमञ्जरी सोचने लगी,—'इन कामान्ध पुरुषोंको धिक्कार है, जो इस प्रकार लोक-लाज और पाप-पुण्यका विचार छोड़कर काम करने लगते हैं।' जब अशोकमञ्जरीने कोई उत्तर नहीं दिया, तब विद्याधरोंके राजाने सोचा, कि अभी यह मां बापके ध्यानमें डूबी है, इसी लिये चुप है; आगे चलकर मेरी कही मान लेगी। यही सोच उसने अशोकमञ्जरीको तापस कुमारके वेशमें बना दिया और उसे बड़े प्यारसे रखने लगा; पर उसके लाख प्यार जतलाने परभी अशोकमञ्जरीका उसपर अनुराग नहीं हुआ।

किसी दिन वह विद्याधरोंका राजा तापसकुमारको सबर-सेना नामक एक जंगलमें छोड़कर अपने नगरमें चला गया। उसी समय उसके साथ तुम्हारी मुलाक़ात हुई। उसने ज्योंही तुमको अपना हाल सुनाना चाहा, त्योंही विद्याधर राजा वहाँ आकर उसे उड़ा ले गया। अपने नगरमें लाकर उसने अशोक-मञ्जरीसे कहा कि तू मुझसे ब्याह करले, हठ छोड़ दे। क्या मैं सुन्दर नहीं हूँ जो तू उस आदमीसे तो बातें करती थी और

मुझसे बोलती तक नहीं ? देख, अब यदि न मानेगी, तो मैं तुझे मार डालूँगा ।

"यह सुन अशोकमञ्जरीने मनमें धैर्य रखते कहा,—'हे सत्पुरुष ! सुनो, छल और बलसे राज्य भलेही मिल जाय; पर प्रेम नहीं मिलता। फिर प्रेमके बिना विवाह कैसा ? जो पुरुष अपने ऊपर प्रेम नहीं रखनेवाली स्त्रीको चाहता है, उसकासा मूर्ख दूसरा कौन होगा ? ऐसे हठीको धिक्कार है।'

"अशोकमञ्जरीकी यह फटकार सुन विद्याधरोंका राजा बड़ा क्रोधित हुआ और म्यानसे तलवार निकालकर बोला,—'अरी पापिन ! तू मुझे ज्ञान सिखलाती है। अब भी मान जा, नहीं तो मैं तुझे मार डालूँगा।' अशोकमंजरीने कहा,—'मार ही डालो, बस झगड़ा तै हो जाये।' इसी समय अशोकमञ्जरीके पुण्य-बलसे उस विद्याधरको स्त्री पर हथियार उठानेका बड़ा पछतावा हुआ और उसने तलवार म्यानमें रख ली। इसके बाद उसने अपनी विद्याके प्रभावसे उसे हंसिनी बनाकर सोनेके पींजरेमें रख छोड़ा। अकसर वह उसके पींजरेके पास आकर प्रेमका पचड़ा सुनाया करता था। एक दिन उसकी स्त्री कमलमालाने उसे हंसिनी पर प्यार जताते देख लिया। बस उसके चित्तमें शङ्का उत्पन्न हुई और उसने अपनी विद्यासे सब हाल मालूम कर लिया। फिर क्या था ? हंसिनीको अपनी सौत जानकर उसने पींजड़ेसे बाहर निकाल कर उड़ा दिया। बस वही हंसिनी आज बड़े

भाग्यसे तुम्हारी शरणमें आ पहुँची है। मेरे लिये यही विद्याधर राजा पागल हो रहा था, जिसे तुमने अभी मार भगाया है।"

यह सारा हाल सुनकर तिलकमञ्जरी रोती हुई कहने लगी,—"प्यारी बहन! तुम तापसके वेशमें अकेली वनमें कैसे रहती होगी? अब इस तरह पंछी बनकर तुम कैसे रहती हो? निश्चय ही यह तुम्हारे पूर्व जन्मके पापोंका फल है। अब तुम फिर मनुष्यका रूप कैसे पाओगी?"

उसे यों रोते देख, चन्द्रचूड़ देवने अपने दैवी बलसे उसको फिर सुन्दरी कन्या बना दिया। फिर क्या था? दोनों बहनें बड़े प्रेमसे गले-गले मिलीं। उनको इस प्रकार आनन्दसे मिलते देख, उनके सुखसे सुखी हो कुमार रत्नसारने कहा,—"अच्छा, तिलकमञ्जरी! अब तुम मुझे इस खुशीमें क्या इनाम देती हो, वह बतलाओ। धर्मकी राह पर कुछतो दान करो। दान देने, धर्म करने, ऋण परिशोध करने, शत्रुनाश करने, रोग दूर करने और ठहरावके अनुसार किसीका मिहनताना देने में कभी देर नहीं करनी चाहिये। इसके विपरीत क्रोध आनेपर, नदीके प्रवाहमें प्रवेश करते समय, पाप करते समय, अजीर्ण होनेके बाद खानेके समय, और डरके स्थानोंमें जाते समय देर करना ही अच्छा होता है।"

यह सुन, तिलकमंजरीने कहा,—"हे सत्पुरुष! तुम जैसे उपकारीको मैं अपना सर्वस्व अर्पण किये देती हूँ।" यह कह

उसने कुमारके कण्ठमें मोतियोंका हार डाल दिया। कुमारने बड़े आदरसे वह हार पहन लिया। इसके बाद उसने कमलके फूलोंसे उस तोतेकी भी पूजा-की। अनन्तर चन्द्रचूड़ देवताने कहा,—"कुमार रत्नसार! पहलेतो दैवने ही ये दोनों कन्याएँ तुम्हें दी हैं, अब मैं तुम्हें दिये देता हूँ।" यह कह देवताओंने दोनों कन्याओंकी बाँह कुमारको पकड़ा दी। इसके बाद देवताने चक्रेश्वरी देवीके पास जाकर यह सब हाल कह सुनाया। सुनकर वे भी अपने परिवार सहित विमान पर बैठी हुई वहाँ चली आयीं। वर और वधूने बड़ेही आदरसे उन्हें प्रणाम किया। देविने वंश-वृद्धिका आशिर्वाद दिया। फिर तो देवी और उनकी संगिनियोंने ब्याहकी पूरी तैयारी करके वहीं धूमधामसे उनका ब्याह रचाया और सारे मङ्गल मनाये। फिर चक्रेश्वरी देवीने उनको एक सतमंजिला मकान रहने के लिये दिया। रत्नसार दोनों स्त्रियोंके साथ उसी महलमें रहता हुआ संसारके सारे सुख भोगने लगा।

इधर चक्रेश्वरी देवीकी आज्ञासे चन्द्रचूड़ने कनकपुरके राजा कनकध्वजके पास जाकर इस ब्याहके लिये बधाई दी और सारा हाल कह सुनाया। सुनकर राजा बड़े प्रसन्न हुए और मन्त्री, सेना, सामन्त आदिको साथ लिये हुए वहीं आ पहुँचे, जहाँ उनकी कन्याएँ और दामाद थे। पिताके आनेकी खबर पातेही कन्याएँ दौड़ी हुई उनके पास चली आयीं और रत्नसारने भी उनके निकट आकर उन्हें प्रणाम किया। राजा

अपने दामादके रूप-गुण देखकर बड़े प्रसन्न हुए। इसके बाद सबके भोजनकी तैयारी हुई। राजाको यह तैयारी देखकर और भी आनन्द हुआ। उन्होंने दामादको अपने यहाँ आनेका न्योता दिया। रत्नसारने यह निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और सबलोग कनकपुरीमें आ पहुँचे। कुमारका नगर प्रवेश बड़ी धूमधामके साथ हुआ। कुछ दिन रत्नसारने वहाँ भी बड़े सुखसे दिन बिताये। तोता भी बड़े आनन्दसे सोनेके पींजरेमें पड़ा रहता था। इसी प्रकार सुख भोगते हुए बहुत समय निकल गया।

एक दिन कुमार रत्नसार रातके समय बड़े आनन्दसे सोये हुए थे। इसी समय एक अच्छे-भले रूप और सुन्दर गहने-कपड़ेसे सुशोभित तथा चोरी करनेमें चतुर मनुष्य हाथमें तलवार लिये क्रोधके साथ वहाँ आ पहुँचा। वह ज्योंही दबे पाँवों भीतर आया, त्योंही कुमारकी नींद खुल गयी। उसने कड़ककर पूछा,—"कौन है! तुम मेरे महलमें किस लिये आये?"

उस आने वालेने कहा,—"बस, यदि तू वीर है, तो मेरे साथ लड़नेके लिये तैयार हो जा। ख़बरदार! अरे, आख़िर तो जातिका बनियाही ठहरा। तुममें बल कहाँसे आया? धूर्त्ततामें भलेही स्यार बड़ा हो; पर शेरके सामने भला कब तक ठहर सकता है?"

यह कह वह, आदमी पींजरेमें पड़े हुए तोतेको उठा,

लेचला। कुमार म्यानसे तलवार निकाले उसके पीछे दौड़ा। बहुत दूरतक उसने उस चोरका पीछा किया, पर ज्योंही उसने चोरको पकड़ना चाहा, त्योंही वह आसमानमें उड़ गया। जब वह कहीं न दिखाई दिया, तब कुमारने सोचा,—"यहतो मेरा कोई शत्रु मालूम पड़ता है। न मालूम यह कौन देव, दानव, विद्याधर या भूत आया, जो मेरे प्यारे तोतेको ही ले भागा। हाय! मेरा प्यारा तोता कहाँ चला गया? न मालूम उसकी क्या गति हुई! उसके बिना मेरी भी न जाने क्या गति होगी!"

वह इसी तरह सोचता और मन-ही-मन दुखी हो रहा था, कि इतनेमें उसे यह विचार आया, कि व्यर्थ इस तरह विलाप करनेसे क्या लाभ है? रोने-धोनेसे वह तोता तो आ नहीं जाता। चलकर कहीं और उसको ढूँढ़ना चाहिये। यदि मिल गया, तबतो घर लौटूँगा, नहीं तो नहीं।

इसी प्रकार सोच-विचार करता हुआ कुमार तोतेकी तलाशमें इधर-उधर घूमने लगा; पर वह तोता कहीं दिखाई न दिया। बातभी ठीक ही थी। आसमानमें गई हुई चीज़ दुनियामें भला कैसे मिलती? सारा दिन खोजने-ढूँढ़नेके बाद कुमारने एक जगह गढ़, नगर, हार और ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित एक नगर देखा, जिसमें मणि-रत्नोंसे जड़े हुए मकान थे। उस नगर की शोभा देखकर कुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह अचरज-भरी आँखोंसे वहाँकी शोभा देखने लगा।

देखते-देखते वह ज्योंही द्वारके भीतर प्रवेश करने लगा, त्योंहीं गढ़के ऊपर बैठी हुई एक मैना बोली,—"कुमार! तुम इस नगरमें न जाओ।"

कुमारने आश्चर्यके साथ पूछा,—"क्यों?"

मैना बोली,—"हे सज्जन! यदि तुम भला चाहते हो, तो नगरमें न जाओ। मैं तुम्हारे भलेके ही लिये कहती हूँ। भले आदमी बिना कारणके कोई बात नहीं कहते। यदि तुम कारण जानना चाहते हो, तो वह भी सुनलो—

"इस नगरका नाम रत्नपुर है। यहाँ पुरन्दर नामके राजा बड़े न्यायसे प्रजाका पालन करते हुए राज्य कर रहे थे। उन्हीं दिनों एक चोर तरह-तरहके वेश धारण करके सदा नगरमें चोरी किया करता था और धनवनोंके घरमें घुसकर खूब धन लूटा करता था। नगरके रक्षक हज़ार कोशिशें करनेपर भी उसको गिरफ्तार न कर सके।

"एक दिन नगर-भरके महाजन मिलकर राजाके पास आये और निवेदन करने लगे,—महाराज! एक चोर हम लोगोंके घरोंमें सेंध मारकर हमारा सारा धन लूटा करता है और नगर-रक्षक उसे पकड़ नहीं पाते।"

"यह सुन, राजाको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने उसी समय नगरके कोतवालको बुलाकर कहा,—'क्यों जी कोतवाल! तुम्हारे रहते हुए नगरमें चोरी-डकैती हो रही है और तुम्हारा किया कुछ भी नहीं होता?' कोतवालने डरते-

उसने कहा,—"प्रभो ! जैसे रोग कभी-कभी असाध्य हो जाता है, वैसेही यह चोर भी असाध्य हो रहा है। हमलोगोंने उसे गिरफ्तार करनेके उपाय करनेमें कभी त्रुटि नहीं की, पर वह आज तक हाथ नहीं आया। अब आपको जैसी इच्छा हो, वैसा करें।'

"इसके बाद राजा स्वयं हाथमें तलवार लिये हुए चोरको ढूँढने चले। एक दिन उन्होंने उस चोरको सेंध मारकर धनकी गठरी चुराए लिये जाते देखा। यह देखते ही राजा उसके पीछे-पीछे दौड़े। आगे-आगे चोर और पीछे-पीछे राजा दौड़ने लगे। दौड़ते-दौड़ते चोर एक बगीचेमें घुस गया और वहाँ एक तपस्वीके पास धनकी गठरी डालकर आप चलता हो गया। वह तपस्वी उस समय सोया हुआ था। राजाने जब उसके पास पहुँच कर धनकी गठरी देखी, तब उसीको चोर समझ लिया और मनमें विचार किया, कि यह इतने दिनसे हमारे नगरके लोगोंको लूटा करता था और यहाँ आ, एकान्त देख, गठरी रखकर सोनेका बहाना किये पड़ा है। यही विचारकर राजाने बिगड़कर कहा,—'अरे दुष्ट, पापी, चोर कहींका ! तू तपस्वीका वेश बनाये हमारे सारे नगरके लोगोंको लूटता फिरता है ? रह जा, मैं अभी तुझे जन्म-भरके लिये सुलाये देता हूँ।' यह कह, राजाने उसे गिरफ्तार करके सवेरे उसे मार डालनेका हुक्म कोतवालको दे दिया। दूसरेदिन कोतवालने उस तपस्वीका सिर मुँड़वाकर उसे गधेपर सवार

कराकर सारे नगरमें घुमाया और इसके बाद उसे शूलीपर चढ़ा दिया। वह तापस इस प्रकार अकालमृत्युको प्राप्त होकर दुष्ट राक्षस हो गया। राक्षस-योनिमें आकर उसने राजाको मार डाला और नगरके सारे लोगोंका इस प्रकार नाकमें दम कर डाला कि उन्हें यहांसे भाग जाना पड़ा। राजाके बिना बिचारे कार्य करनेका फल सारी प्रजाको भोगना पड़ा। आजभी यह हाल है, कि जो कोई इसके भीतर जाता है, उसे वह राक्षस मार डालता है; क्योंकि अपने घरमें दूसरेको कौन घुसने दे सकता है? इसी लिये मैं तुम्हें भीतर जानेसे मना करती हूँ, मै यह नहीं चाहती, कि तुम व्यर्थ प्राण गँवाओ।"

यह सुन, मैनाकी चतुराईसे प्रसन्न होकर रत्नसारने कहा,—"मैना! मै उस राक्षससे तनिकभी भय नहीं खाता" यह कह, कुमार निर्भय होकर उस राक्षसके बलकी परीक्षा लेनेके लिये उसी तरह नगरके भीतर जाने लगा, जैसे कोई वीर रणभूमिमें प्रवेश करता है। वहां पहुँचने पर उसने एक जगह एक दूकानमें चन्दनकी लकड़ियां भरी देखीं। दूसरी जगह सोनेका ढेर दिखाई दिया। कहीं कपूरका ढेर, कहीं सुपारी और नारियल, कहीं पूरी-पकवानकी दूकान, कहीं सुगन्ध-द्रव्योंकी दुकान, देखनेमें आयी; पर किसी जगह कोई आदमी नहीं नज़र आया। धीरे-धीरे सारा नगर घूमकर कुमार रत्नसार राजमहलमें घुस पड़ा। राजमहल सप्तमंजिला था। चढ़ते-चढ़ते वह सबसे ऊपरी मंज़िलपर चढ़ गया।

वहाँ उसने नाना प्रकारके मणि-रत्नोंसे सुशोभित शय्या देखी। यह देख, वह थका-माँदा होनेके कारण उसीपर लेट गया। धीरे-धीरे उसे खूब गहरी नींद आ गई। उसको दीन-दुनियाकी ख़बर नहीं रही।

ज्योंही उस राक्षसको मनुष्यके पैरोंकी आहट मालूम हुई, त्योंही क्रोधसे भरा हुआ वहाँ आया और कुमारको सोया हुआ देखकर सोचने लगा, कि भला जहाँपर मनुष्योंको आनेका भी विचार नहीं हो सकता, वहाँ आकर यहतो सो रहा है— यहतो बड़ा ही ढीठ है। अब मैं क्या करूँ? अपने इस शत्रुको किस तरह मारूँ? क्या नखोंसे इसके अङ्ग-पङ्गको चीर डालूँ? या गदासे चूर-चूर कर डालूँ या छुरीसे काट डालूँ? या जलती आगमें डाल दूँ? या गेंदकी तरह आसमानमें उछाल दूँ? या उठाकर समुद्रमें फेंक दूँ? या अजगरकी तरह निगल जाऊँ? अथवा इसे घरपर आया हुआ अतिथि जानकर छोड़ दूँ? कारण, घरपर आये हुए शत्रुको भी नहीं मारना चाहिये। नीति कहती है, कि बुद्धिमान मनुष्य अपने घर आये हुए शत्रुका भी आतिथ्य करते हैं। शुक्र गुरुका शत्रु है और मीन राशि गुरुका स्वग्रह है, तोभी जब शुक्र मीन-राशिमें आता है, तब गुरु उसे उच्च स्थान देता है। इसलिये जब तक इसकी नींद आप-से-आप नहीं खुलती, तबतक चुप रहना ही ठीक है; फिर जैसा कुछ उचित मालूम पड़ेगा, वैसा किया जायेगा।

इस प्रकार विचार कर राक्षस बाहर चला गया और थोड़ी देरमें बहुतसे भूतोंको साथ लेकर लौटा। उस समय तक कुमार गहरी नींदमें ही पड़ा हुआ था। अबके उसे राक्षसने कड़ककर कहा,—"अरे निर्भय! निर्बुद्धि! निर्लज्ज कहींका! अभी मेरे घरसे बाहर चला जा। नहीं तो उठकर मेरे साथ युद्ध कर।"

राक्षसके मुँहसे निकले हुए ये क्रोधभरे वचन सुन कुमार-की नींद टूट गयी। उसने जगतेही कहा,—"अरे राक्षसराज! तूने मुझे कच्ची नींदसेही क्यों जगा दिया? अच्छा: तूने मेरी नींद तोड़ी है, तो अब तेरी नींदभी ज़रूर ही हराम हो जायेगी. क्योंकि कहा हुआ है, कि धर्मकी निन्दा करने वाले, पंक्ति भेद करनेवाले, बिना कारणके किसीकी नींद तोड़नेवाले, बात काटनेवाले और बेमतलब पापकरनेवाले ये पाँचों घोर पापी कहे जाते हैं। इसलिये यदि तू भला चाहता है, तो तुरत ताज़े घीमें ठंढा पानी मिलाकर उसीसे मेरा तलवा मसल, जिसमें फिर मुझे नींद आजाये।"

ये गर्वीले वचन सुन, राक्षसने सोचा,—"यहतो बड़ाही अद्भुत मनुष्य मालूम होता है। देखोतो सही यह मुझीसे अपना तलवा मलनेको कह रहा है। यहतो किसी सिंहपर मृगकी हुकूमतके बराबर है। यहतो बड़े गज़बका साहसी मनुष्य है। बड़ाही ढीठ है। देखो तो कैसा निडर बना हुआ है। अच्छा विशेष विचार करनेका क्या काम है? एकबार इसका

भी कहा कर देखूँ।"

यही सोचकर वह राक्षस बढ़िया ताजा घी पानीमें घोल-कर उसीसे कुमारके पैरमें मालिश करने लगा। सच है, पुण्य का प्रताप बड़ा भारी होता है। वह अनहोनीको भी होनी कर देता है। थोड़ी देर बाद कुमारने उस राक्षससे कहा,—"भाई! मैंनेतो एक साधारण मनुष्य होते हुए भी तुमसे इत-नी सेवा कराई और तुमने भी खूब जी लगाकर की, इससे मैं तुमपर बहुत संतुष्ट हूँ। अब तुम मुझसे कोई वरदान माँगो। जो कोई तुम्हारा कठिन काम रुका हुआ हो, उसे मैं अवश्य पूरा करदूँगा।"

कुमारकी यह बात सुन, राक्षसको बड़ा विस्मय हुआ और उसने अपने मनमें विचार किया,—"यह तो एक बारही उ-लटी बात हो गई, जो इसने मनुष्य होकर मुझसे सेवा कराई और अब वरदान देनेको कह रहा है। यहतो ऐसाही मालूम होता है, जैसे कल्प-वृक्षही किसीसे किसी बातकी याच-ना करे। यह भला मुझे क्या देसकता है और मेरा क्या काम कर सकता है? ऐसी कौनसी वस्तु इस मनुष्यके पास है, जो मुझे आसानीसे नहीं मिल सकती? फिर भी माँगूँ तो क्या माँगूँ।" यही सब सोचकर उसने मधुर वचनोंमें कहा,—"ऐसा मनुष्य त्रिलोकीमें भी दुर्लभ है, जो दूसरोंका मनोरथ पूरा करे। हाँ, माँगनेवाले पुरुषके सभी गुण याचना करनेके साथही नष्ट हो जाते हैं। कहा भी है, कि सबसे हलकी

धूल है, धूलसे हलका तृण है, तृणसे भी हलकी हवा है, उस-से भी हलका याचना करने वाला है, पर जो ऐसे याचकको ठगता है, वहतो उससे भी बढकर हलका है। नीतिमें भी कहा है, दूसरेके आगे हाथ पसारनेवाला पुत्र माताएँ पैदा न करें, सो ही अच्छा है और याचककी प्रार्थना पूरी न करने वाला पुत्र तो पेटमें ही न आवे सो अच्छा। इसलिये हे कुमार! यदि तुम यह वचन दो कि मैं प्रार्थना—अवश्यही पूरी करूँगा, तो मैं तुमसे कुछ माँगूँ।"

कुमारने कहा,—"हे राक्षसराज! मुझसे जो काम लेना है ले सकते हो। मैं तैयार हूँ।"

राक्षसने कहा,—"अच्छा, तो सुनो। मैं तुम्हें इस नगरका राज्य सौंपता हूँ, तुम यहाँके राजा बन जाओ और मेरे इच्छानुसार राज्यके सुख भोगो। मैं तुम्हारा सेवक बना हुआ तुम्हें दिव्य भोग और दिव्य समृद्धि दूँगा। सदा तुम्हारी सेवा करता रहूँगा। सब राजा लोग तुम्हारे अधीन होकर रहा करेंगे। तुम इस एकच्छत्र राज्यको ज़रूर ले लो।"

यह सुन, रत्नसारने अपने मनमें विचार किया,—"राज्य बड़े पुण्यसे मिलता है। सो यह राक्षस मुझे इस प्रकार आ-सानीसे राज्य दे रहा है। परन्तु मैंने राज्य नहीं ग्रहण करनेका व्रत पहलेही ले रखा है। फिर क्या करूँ? यह तो बड़ी ही विकट समस्या आ पहुँची। एक ओर तो उस वचन की रक्षा है, जो मैंने अभी इसे दिया है और दूसरी ओर

व्रत-भङ्गका भय है। अब क्या करना चाहिये? यह तो घोर सङ्कटका समय आ पहुँचा।”

ऐसा विचार कर रत्नसारने कहा,—“देव! कुछ और माँगो; क्योंकि राज्य नहीं ग्रहण करनेका तो मैंने नियम ले रखा है, इसलिये राज्य लेनेसे मेरा नियम-भङ्ग हो जायेगा। फिर जब व्रत-भङ्ग ही हो गया, तब बाक़ी क्या रहा? जिससे कानही टूट जाये उस सोने से क्या काम?”

राक्षसने कहा,—“इस शरीरमें लोभ, लज्जा, दाक्षिण्य आदि सभी कुछ हैं; पर उत्तम पुरुष जो बात स्वीकार करलेते है, उसे तो जीते-जी कदापि नहीं छोड़ते।”

कुमारने कहा,—“तुम्हारा कहना बहुत ठीक है, पर मैंने गुरुके निकट नियम ग्रहण किया है, कि पापके स्थान और अनर्थके मूल राज्यको कभी ग्रहण नहीं करूँगा। फिर नियम भङ्ग करनेसे मनुष्यको बड़ा दुःख होता है, इसलिये तुमतो ऐसा काम करो, जिससे मेरा नियम न टूटे।”

राक्षसने कहा,—“जब तुमने मेरी पहलीही माँग पूरी नहीं की तब और क्या माँगूँ? तुम मूर्ख हो, अपना पैर आपही काटनेको तैयार हो। देवताका दिया हुआ राज्य लेनेमें तुम्हें क्यों पाप लगने लगा? मैं तुम्हें राज्य दे रहा हूँ और तुम नाहीं कर रहे हो। इत देखकर नाक सिकोड़ रहे हो। अच्छा मैंने तुम्हारे पैरोंमें घीकी मालिश की, तुम्हें आरामसे अपनी शय्यापर सोने दिया और हर तरहका आराम पहुँचाया,

फिर भी तुम मेरी बात नहीं मानते। अच्छा, तो इसका फल अब देखो।"

यह कह, राक्षसने कुमारका हाथ पकड़कर उन्हें घुमाकर आसमानमें उछाल दिया। कुमार समुद्रमें जा गिरा। वह समुद्रके अन्दरही अन्दर पाताल तक चला गया और फिर वहाँसे ऊपर आया। अबकी राक्षसने उसे पानीसे बाहर निकालकर कहा,—"क्यों बेकार हठके मारे अपनी मौत आप बुला रहा है? क्यों नहीं मेरा दिया हुआ राज्य ले लेता?, मैंने देवता होकर भी तेरे कहे अनुसार नीच सेवा करदी, और तू मेरा कहा हुआ अच्छा कामभी नहीं करता? तू यह राज्य ले ले, नहीं तो मैं तुझे उसी तरह पटक-पटककर मार डालूँगा, जैसे धोबी कपड़े पटककर धोता है।"

यह कह, वह राक्षस कुमारको पकड़कर एक बड़ी भारी शिलापर दे मारनेके लिये ले गया और बोला,—"अरे मूर्ख! मेरे कहे अनुसार काम कर और व्यर्थ अपनी मौत न बुला।"

कुमारने कहा,—"बस, मुझसे अधिक कुछ न कहलवाओ और जैसा तुम्हारी मर्ज़ी हो, वैसा करो।"

कुमारकी यह बात सुनकर राक्षस बड़ा प्रसन्न हुआ और अपना बनावटी राक्षस-रूप छोड़कर देवताका रूप धारण कर लिया। इसके बाद उसने कुमार पर पुष्पोंकी वृष्टि कर जय-जयकार करते हुए कहा,—"वाह! कुमार तुम धन्य हो। तुम जैसे पुरुषोंको पाकर ही पृथ्वीका रत्नगर्भा नाम सार्थक होता
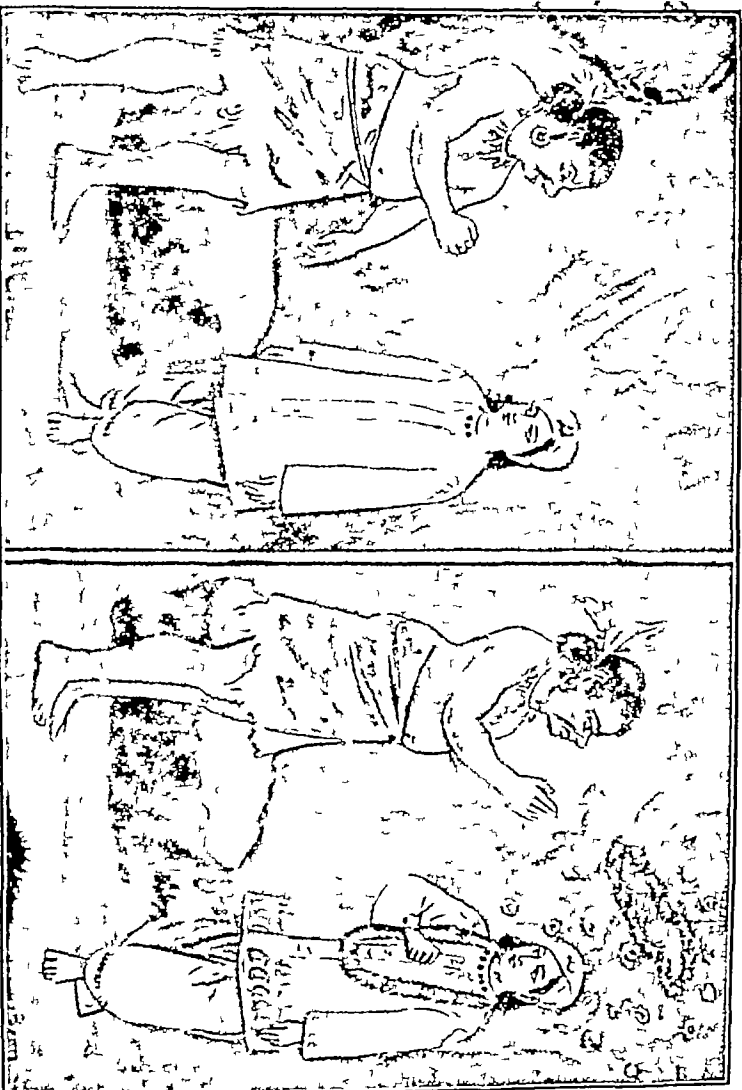
अरे मूर्ख ! मेरे कहे अनुसार काम कर और व्यर्थ अपनी मौत न बुला ।

वाह ! कुमार तुम धन्य हो ।

(पृष्ठ ३४)

है। हे सत्पुरुष! तुम्हारी धर्म-दृढ़ता बड़ीही प्रशंसनीय है। इन्द्र के सेनापतिने तुम्हारी प्रशंसा की थी, इससे सब देवताओंको बड़ा विस्मय हुआ था। इसी समय सौधर्म-देवलोक और ईशान-देवलोकमें नये इन्द्र उत्पन्न हुए। उन दोनोंमें एक विमानके लिये झगड़ा हुआ। ३२ लाख विमान सौधर्म-लोकमें और २८ लाख विमान-ईशान देवलोकमें है, तोभी वे दोनों एक विमानके लिये लड़ पड़े। उन दोनों इन्द्रोंने लोभके मारे बहुतवार परस्पर युद्ध किया। दो आदमी लड़ते हों, तो तीसरा बीच-बचाव करता है; पर दो इन्द्रोंके युद्धमें कौन बीच-बचाव करने जाये? इसी तरह दोनोंमें बहुत दिनोंतक लड़ाई होती रही। एक दिन बड़े-बूढे देवताओंने विचारकर जिनराजकी प्रतिमाके जलसे दोनों इन्द्रोंका अभिषेक, किया जिससे दोनोंका वैरभाव जाता रहा। फिर उन दोनोंको देवताओंने पहलेका सब हाल यों बतलाया,—'दक्षिणदिशामें जो सब विमान हैं, वे सब सौधर्मेन्द्रके हैं। उत्तर दिशाके विमान ईशानेन्द्रके हैं। पूर्व और पश्चिमके तेरहों गोलाकार विमान सौधर्मेन्द्रके ही हैं। उसी प्रकार पूर्व और पश्चिमदिशाके जो तीन और चार कोनेवाले विमान हैं, उनमें आधे सौधर्मेन्द्र और आधे ईशानेन्द्रके है। सनत्कुमार और माहेन्द्र-लोकमें इसी प्रकारका नियम है।'

"देवताओंकी यह बात सुनकर दोनों इन्द्रोंके दिलसे वैर-भाव जाता रहा और दोनोंमें पूरी प्रीति हो गयी। फिर चन्द्रशेखर देवताने इन्द्रके सेनापति हरिणीगमेषीसे पूछा,—

'क्या कोई ऐसा मनुष्य है, जो लोभके वशीभूत न हो? जब देवताही लोभमें पड़कर लड़ते हैं, तब फिर औरोंकी क्या बात है?' इस प्रकारकी बात सुनकर हरिणैगमेषीने कहा,—'बात तो ठीक है; परन्तु सब वस्तुओंके लिये सबके मनमें लोभ नहीं होता। ऐसे भी मनुष्य पाये जाते हैं, जो इन्द्राणी का भी लोभ मनमें नहीं आने दें। इन दिनों सेठ वसुसारका पुत्र रत्नसार कुमार भी ऐसाही है, जो देवताका दिया हुआ राज्य भी नहीं ले सकता। सारी दुनियाँमें उससे बढ़कर निर्लोभ और कोई नहीं है। हे महाभाग? इन्द्रके सेनापतिकी यह बात सुनकर चन्द्रशेखरको इसका विश्वास न हुआ और वह यहाँ तुम्हारी परीक्षा लेने आया। उसीने राक्षसका रूप बना, इस प्रकार सूनी नगरीका दृश्य दिखाया, तुम्हारे तोतेको पींजड़े सहित ग़ायब किया, मैना बनाकर तुम्हें आनेसे रोका, फिर तुम्हें समुद्रमें फेंका और तुम्हें इतना हैरान किया। अबतो तुम्हें मालूम हो होगया होगा कि मैंहो चन्द्रशेखर हूं। अब तुम मुझे जो कहो, कर दूँ, क्योंकि देव-दर्शन कभी विफल नहीं हो सकता।"

यह सुन, रत्नसारने कहा,—"हे सुरेश्वर! जिनधर्मके प्रसादसे मेरे पास सभी कुछ है। मुझे कुछ भी नहीं चाहिये। हाँ, मुझे नन्दीश्वर-तीर्थकी यात्रा करनेकी इच्छा है।"

यह सुनतेही चन्द्रशेखरने उसे पींजरा सहित तोता मँगवा दिया और कनकपुरमें पहुँचा दिया। वहाँ कनकध्वज राजाके

सामने उसकी बड़ाई करके बहुत मान-आदर दिखलाकर देवता अपने स्थानको चला गया ।

तीसरा परिच्छेद
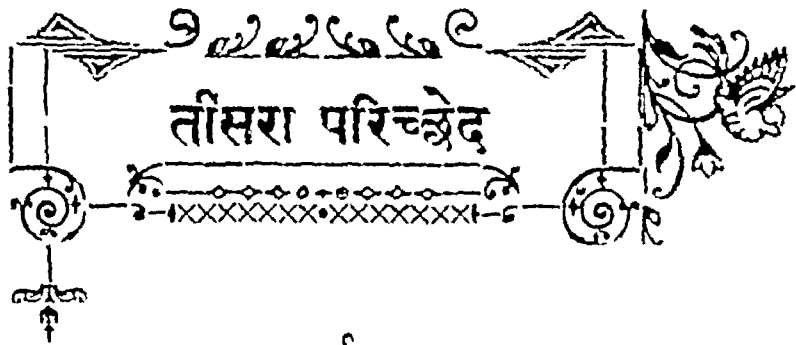
पूर्व भव

इसके बाद कुमार रत्नसार अपने ससुर राजा कनकध्वजकी आज्ञा लेकर दोनों स्त्रियाँ और सामन्त तथा मन्त्री आदिको साथ लिये हुए अपनी नगरीकी ओर चला। रास्तेमें जगह-जगह भिन्न-भिन्न राजाओंसे आदर-सम्मान पाता हुआ वह कुछही दिन बाद अपनी रत्नविशाला नामक नगरीमें पहुँच गया। उस समय उसकी बढ़ी-चढ़ी समृद्धि देखकर राजा समरसिंह और सेठ वसुसार आदि बहुत आदमियोंके साथ उसे सादर नगरमें लिवा लेजानेके लिये आये और खूब धूमधामसे उसे नगरमें ले गये। इसके बाद उस तोतेने राजा और अन्यान्य सब लोगोंको कुमार रत्नसारके सारे चरित्र कह सुनाये। सुनकर सबको बड़ा अचम्भा हुआ और सब लोग कुमारको बार-बार बड़ाई करने लगे। कुमार बड़ेही सुखसे इसलोकके सारे सुख भोग करने लगे।

एक दिन उस नगरके उद्यानमें श्रीधर्मसूरिका शुभागमन हुआ। रत्नसार आदि सभी लोग उनकी वन्दना करने गये।

राजाभी वन्दना करने आये। सब लोगोंके अपने-अपने योग्य आसनोंपर बैठ जानेपर आचार्यने धर्मदेशना की। देशना पूरी होनेपर राजाने गुरुसे पूछा,—"हे भगवन्! आप इस कुमार रत्नसारके पूर्व भवकी बात बतलाइये। इसने पहले कौनसा पुण्य-कार्य किया था।"

चारों प्रकारके ज्ञानवाले गुरुने कहा,—"इस भारतक्षेत्रमें राजपुर नामका एक नगर है। वहाँ किसी समय जितशत्रु नामके राजा राज्य करते थे। उनके पुत्रका नाम श्रीसार था। कुमारके तीन मित्र थे। एक क्षत्रियका पुत्र, दूसरा मन्त्रीका पुत्र और तीसरा सेठका लड़का था। चारों मित्रोंमें बड़ी गहरी मित्रता थी।

एक दिन रानीके घरमें सेंध डालकर धन चुराकर ले जाते हुए चोरको कोतवालने गिरफ्तार किया। जब वह राजाके दरबारमें हाज़िर किया गया, तब राजाने उसे मार डालनेका हुक्म दे दिया। कोतवाल उसे शूली देनेको ले चला। इतनेमें कुमार श्रीसारकी निगाह उस पर पड़ी। पूछनेपर कोतवालने सब हाल कह सुनाया।

कुमार श्रीसारने कहा,—"मैं अपनी माताके धनके चोरको खुद आप सजा दे लूँगा।" यह कह वह उस चोरको अपने साथ लेकर ग्रामके बाहर ले गया और फिर चोरी न करनेकी प्रतिज्ञा करवाकर चुप चाप छोड़ दिया। सच है, बड़े लोग अपने साथ बुराई करने वालों पर भी दया करते हैं। सभी

आदमियोंको दो-चार शत्रु और दो-चार मित्र होते हैं। इसी लिये कुछ लोगोंने राजाके पास जाकर कुमारकी चुगली खायी। इसपर राजाने कुमारको बुलाकर डाँटते हुए कहा,—"दुष्ट! तूने मेरी आज्ञाको भी टाल दिया?" इस डाँटसे कुमारको बड़ा दुःख हुआ, क्योंकि मानी पुरुषोंको प्राणहानिसे भी मान-हानिका अधिक दुःख होता है।

इसी लिये कुमार अपने तीनोंही मित्रोंको साथ लेकर नगरके बाहर चला गया। सच है, काम पड़नेपर नौकरोंकी, आपत्तिमें मित्रोंकी तथा वैभव नष्टहो जानेपर स्त्रीकी परीक्षा होती है।

"चारों यार एक क़ाफ़िलेके साथ चलेजा रहे थे, कि इत-नेमें एक बड़ा जङ्गल मिला और वे राह भूल गये। तीन दिन भटकने बाद चौथे दिन वे एक गाँवमें आये और वहीं रसोइ पकाकर खाने बैठे। इसी समय वहाँ कोई जिनकल्पी मुनि अहार लेनेके लिये आये। भद्रक प्रकृतिवाले कुमा-रने शुभ परिणाम होनेके कारण मुनिको दान दिया और बहुतेरे भोग-कर्मोंका उपार्जन किया। प्रधान और सेठके पुत्र ने तो इस दानका अनुमोदन किया, परन्तु क्षत्रिय-पुत्रने पुण्यहीन होनेके कारण कहा,—"यारो! मुझे भी भूख लगी है, कुछ अपने भी रखो, सब इन्हींको मत दे दो।" इस प्रकार कहकर उसने दानान्तराय-कर्मके कारण भोगान्तराय-कर्मका उपार्जन किया।

"इसके बाद नितशत्रु राजाने उन चारोंको बुलाकर ओसारको राज्य, प्रधान-पुत्रको मन्त्रीका पद, सेठके पुत्रको सेठकी पदवी और क्षत्रियके पुत्रको सेनापतिका पद प्रदान किया। क्रमसे चारोंने अपने-अपने पदोंका उपभोग करते हुए मृत्यु प्राप्त होनेपर नये जन्ममें पूर्व-कर्मोंका भोग करनेके लिये नये शरीर धारण किये। ओसारही तो रत्नसार है, मन्त्री और सेठके पुत्र उसकी दोनों स्त्रियोंके रूपमें उसके साथ हैं और वही क्षत्रिय-पुत्र दानान्तराय-कर्म करके तोता हुआ है। पिछले जन्ममें रत्नसारने जिस चोरकी जान बचाई थी, वही चन्द्रचूड़ देवता हुआ है; क्योंकि पीछे उसने तापस-व्रत ले लिया था। पिछले संस्कारोंके ही कारण देवताने रत्नसारकी सहायता की है।"

इस प्रकार रत्नसारके पूर्व भवका वृत्तान्त श्रवणकर राजा आदि सभी लोगोंको आदर-पूर्वक सुपात्रको दान करनेकी महिमा मालूम हो गयी और वे लोग उसी समयसे इस विषयमें पूरा यत्न करने लगे। साथही उन लोगोंकी श्रद्धाभी जिन-धर्मपर विशेष बढ़ गयी। रत्नसार कुमारभी पूर्व पुण्यके कारण दोनों स्त्रियोंके साथ विविध प्रकारके भोग भोगने लगा और साथही-साथ तरह-तरहसे धर्माचरण भी करने लगा। उसने रथ-यात्रा और तीर्थ-यात्रा की, सोने-चाँदीकी प्रतिमाकी, प्रतिष्ठा करायी और जिनशासनकी खूब प्रभावना की। उसके साथ रहकर उसकी स्त्रियाँ भी धर्मके कार्य करने लगीं। बाद-

को समाधि-मरणसे मृत्युको प्राप्त होकर रत्नसार अच्युत लोक में देवता हुआ। वहांसे आकर महाविदेह-क्षेत्रमें उत्पन्न हो, जिनधर्मका आराधनकर सिद्धि-पदको प्राप्त होगा।